ISSN : 3048-6203 Volume -2| Issue -2| July - Dec 2025

शोध भूमि

शिक्षा एवं शिक्षण शास्त्र विषय की पूर्व समीक्षित शोध पत्रिका

Page No. : 425-432

अस्मितावादी लेखन के संदर्भ में मन्नू भंडारी की कथा–दृष्टि का मूल्यांकन

इन्द्रदेव प्रसाद
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड)
संपर्क सूत्र : 9973062275
ई मेल : indradew6900@gmail.com

सारांश :

अस्मिता का अर्थ है पहचान का बोध। अस्मिता व्यक्ति की भी हो सकती है, समाज की विभिन्न इकाइयों की भी, आर्थिक वर्गों, वर्णों और लिंगों की भी। ये सारी इकाइयाँ जब किसी बड़ी सांस्कृतिक अस्मिता का निर्माण करती हैं, तब समाज का गठन होता है एवं इसी प्रक्रिया के तहत राष्ट्र का निर्माण होता है। जब एक या एक से अधिक अस्मिताओं पर किसी बड़ी वर्चस्ववादी अस्मिता अपना एकाधिकार कायम करने लगती है तब स्वाभाविक से छोटी–छोटी अस्मिताओं का दमन और शोषण शुरू होता है। अस्मिताओं के बीच टकराव शुरू हो जाता है। भारत की आजादी के बाद यही स्थिति स्त्री और दलित अस्मिता को लेकर दिखाई देती है और इसकी अभिव्यक्ति किस प्रकार मन्नू भंडारी के कथा–साहित्य में हुई है, इसी पर यह आलेख केन्द्रित है।

शब्द–सूत्र : स्वतंत्रता, अस्मिता, स्त्री–चेतना, सांस्कृतिक, राष्ट्र, जनतांत्रिक, समतामूलक, परिघटना, समंजन, पितृसत्ता

मुख्य आलेख :

भारतीय स्वतंत्रता के बाद एक सशक्त वैचारिकता से मुखर स्त्री अस्मितावादी आंदोलनों का उदय हुआ और इसकी अभिव्यक्ति कृष्णा सोबती तथा मन्नू भंडारी जैसी लेखिकाओं के कथा साहित्य में दिखलाई देती है। हिंदी

कथा–साहित्य में स्त्री–चेतना का उदय कथा–साहित्य लेखन के प्रारंभ से दिखाई पड़ता है। हिंदी उपन्यास के शुरुआती दौर से ही नारी उत्थान को कथ्य बनाकर पं० गौरादत्त ने 'देवरानी जेठानी की कहानी' श्रद्धाराम फिल्लौरी ने 'भाग्यवती' उपन्यास लिखकर एवं उसके बाद प्रेमचंद और प्रेमचंद युग के लेखकों, प्रेमचंदोत्तर युग और स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी को केन्द्र में रखकर उपन्यासों की रचना होती रही। कथाकारों के द्वारा नारी के शिक्षा, अधिकार एवं समाज में उनके सम्मान का वर्णन किया जाता रहा है।

इस प्रकार हिंदी कथा–साहित्य लेखन में पुरुष लेखकों के अलावे महिला कथाकारों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इन लेखिकाओं ने स्त्री को समाज में स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्थापित किया। महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सिर्फ हिंदी ही नहीं अन्य भाषा के साहित्यकारों द्वारा भी सामने लाने का प्रयास किया गया। महिला कथाकारों के योगदान को इस संदर्भ में देखा जा सकता है– "भारतीय भाषाओं में नारी को उसके अपने पूरे वजूद में, पूरी तरह से हाड़–माँस की नारी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रथम विस्फोटक प्रयत्न इस्मत चुगताई की 'लिहाफ' कहानी ने किया जिसके प्रकाशन ने साहित्य की दुनिया में एक जलजला–सा ला दिया, एक थर्राहट जिसकी धमक दूर तक और देर तक सुनी जाती रही। फिर हिंदी में नद–नदिया–सी खुली–डुली मद–भरी 'मित्रो मरजानी' (कृष्णा सोबती) का जन्म हुआ जिसने पारंपरिकता और मर्यादा की चुनर को तार–तार कर साहित्य में नई नैतिकता का सूत्रपात किया। वह नैतिकता थी स्त्री को वस्तु, पदार्थ से व्यक्ति में परिवर्तित करने की। हिंदी में महिला कथाकारों द्वारा आत्मकथा लिखने का दौर तो काफी बाद में आया किंतु इससे पूर्व उन्होंने अपनी औपन्यासिक कृतियों द्वारा हिंदी उपन्यास के चरित्र को भारी बदलाव दिया। उसने अपना मनोसंसार पूरी स्पष्टता, ईमानदारी और सारी भीतियों, निषेधों–वर्जनाओं से मुक्त होकर पूरे खाँटी रूप में अभिव्यक्त किया।"[1]

बीसवीं–इक्कीसवीं शताब्दी का संधिकाल और बाद का समय अनेक अर्थों में महत्वपूर्ण है। पारंपरिक रूप से समाज के उपेक्षित दलित और हाशिये पर छूटे हुए समाजों और समूहों का अस्मिताबोध, जागृत और जनतांत्रिक समाज द्वारा उन्हें समतामूलक व्यवहार, स्थितियाँ और सहूलियत देने की पैरोकारी और इन सबके विपरीत बाजारवादी ताकतों का उदय इस अभूतपूर्व परिदृश्य की रचना करते हैं। समाज की विभिन्न अस्मिताओं की आवाज हर काल में किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त होती रही है– चाहे वह लोक साहित्य हो, लोक कलाएँ हो, लिखित साहित्य हो अथवा अभिव्यक्ति का कोई अन्य माध्यम सबमें यह मिलती है। लेकिन लोक परंपरा का गायक अथवा कलाकार बहुधा अनाम ही छूट जाते रहे हैं, यहाँ तक कि परंपरागत लिखित साहित्य में भी उनकी उपस्थिति की अनदेखी की जाती रही

है। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों–आलोचकों की राय में उपेक्षा की यह प्रवृत्ति हाल के समय तक जारी रही, तबतक जबतक सबऑल्टर्न विमर्शों की शुरुआत नहीं हुई।

वर्तमान समय में समाज का हर वर्ग अपनी पहचान सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर स्थापित कर रहा है। इस संदर्भ यह उद्धरण उल्लेखनीय है– "विकसित समाजों में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों का कारण नारीवादी आंदोलन भी रहा है। अपने–आप में यह परिघटना बड़ी नाटकीय रही है। 1940 में अमेरिका की कुल स्त्री जनसंख्या का 14% ही बाह्य जगत में कार्यरत था जबकि 1980 में यह दुगुना हो गया। हालांकि श्रम के बाजार में स्त्रियों की भागीदारी कोई नई बात नहीं थी। 19वीं शताब्दी के अंत से ही स्त्रियाँ सेवा क्षेत्र, दुकान और ऑफिसों में सक्रिय हो चुकी थी। जैसे–जैसे जनसंख्या शहरों की ओर अग्रसर होती जा रही थी, वैसे–पैसे उद्योगों में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ती ही गई। स्त्रियों के सस्ते श्रम की आवश्यकता दिन–प्रतिदिन बढ़ती गई। साथ ही फोर्डवादी उद्योग व्यवस्था के औद्योगिक क्षेत्रों में भी बड़ी संख्या में स्त्रियों को समेटना संभव हुआ।... पश्चिमी स्त्रियों ने उच्च शिक्षा भी प्राप्त की। द्वितीय विश्व के बाद विश्वविद्यालय शिक्षा में स्त्रियों की संख्या बढ़ती गई। पश्चिम में श्रम के बाजार में विवाहित स्त्रियों की भागीदारी कम नहीं थी। उन्हें उच्च शिक्षा मिली और इसी कारण साठ के दशक में नारीवादी आंदोलन के द्वितीय दौर की भूमिका आरंभ होती है।"[2]

हिंदी उपन्यास में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्मिता की तलाश लेखकों ने दो रूपों में किया है। स्त्री के विद्रोही और मुखर स्त्रीवादी सोच की सराहना की है। कुछ उपन्यासकारों ने स्त्री–पुरुष के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। स्त्री के दोनों रूपों को इस उद्धरण में देखा जा सकता है– "हिंदी उपन्यास में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व, अस्मिता की तलाश दो रूपों में प्राप्त होती है। एक दृष्टि तो वह है जहाँ वह स्त्रीवादी आंदोलनों की प्रथम लहर के रूप में स्त्री को पुरुष के प्रति विद्रोहिणी बनाकर उसके प्रतिपक्ष के रूप में खड़ा कर दिया गया। पुरुष के प्रति अपार घृणा और विद्रोह का एक विस्फोट–सा दिखाई देता है। दूसरी दृष्टि वह है जहाँ बिना किसी मुखर स्त्रीवादी सोच और घोषित नारों के स्त्री–पीड़ा का सूक्ष्म चित्रण किया गया है, साथ ही यह विचार प्रस्तुत हुआ है कि पुरुष के विरुद्ध जाकर ही स्त्री–स्वातंत्र्य की अवधारणा पूरी नहीं होती, अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों की माँग करते हुए पुरुष के साथ समादृत समंजन (रेस्पेक्टेड एडजस्टमेंट) किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि दूसरा मार्ग ही श्रेयस्कर और प्रीतिकर है, इसलिए वे ही उपन्यास अधिक लोकप्रिय हुए और महत्ता प्राप्त कर सके जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों को समाज, परिवार की आवश्यक इकाई मानकर उनमें समंजन स्थापित करने की चेष्टा की गई।"[3]

स्वतंत्रता बाद के लेखिकाएँ सभी तरह की समस्याओं का डटकर सामना करने का साहस रखती है। दरअसल स्त्री रचनाकार जब अपने मन की गाँठें खोलती हुई साहित्य में उपस्थित होती हैं तो सहस्राब्दियों पुराने पितृसत्तात्मक समाज के चेहरे का वास्तविक रंग–ढंग दिखाई देता है। यह विशेषता समकालीन स्त्री–कथा लेखन को भविष्य में आने वाले संघर्ष और असमानता से मुक्ति के लिए सजग–सचेत बनाती है। इक्कीसवीं सदी के कथा–लेखन में स्त्री–चेतना का यह फलक निरंतर व्यापक होता जा रहा है। प्रारंभिक दौर से ही नारी के प्रति समाज में जो धारणा बनी हुई है उसको इस उद्धरण में देखा जा सकता है– "...स्त्रीत्व की मूल अवधारणा नकारात्मक है। लगभग सभी धार्मिक और दार्शनिक दायरों में स्त्री को पुरुष के संदर्भ में एक अपूर्ण और सापेक्ष जीवन के रूप में ही देखा गया है। वरना यह न माना जाता कि मात्र स्त्री होकर जन्म लेना सही सामाजिक संदर्भ में (सार्थकता से) स्त्री होने के लिए पर्याप्त नहीं है। और हर स्त्री के लिए स्त्रीत्व (यानी खास तरह से उठने, बैठने, बोलने–चालने) की विशिष्ट तालीम भी लेते चलना जरूरी कहा जाता। स्त्री को पुरुष की तरह सृष्टि का सहज रूप से अपना मानने के बजाय बाहरी (तथा लगभग कुछ–कुछ खतरनाक फिल्म को) के रूप में देखने के इस ख्याल का ही फल है कि 'मैं कौन हूँ ?' पूछने पर एक संवेदनशील स्त्री को प्राप्त होने वाली लगभग सारी पारंपरिक परिभाषाएँ उसे अमूर्त, परस्पर विरोधी और एकांगी प्रतीत होती हैं। कोई कहता है कि तुम केवल श्रद्धा हो, तो दूसरा उसे साक्षात् पतन की गर्त बताता है, कोई उसे आँचल में दूध और आँखों में पानी भरे अबला के रूप में देखता है, तो कोई उसे महाशक्ति कहकर उसका स्तवन करता है, कोई उसे उर्वरा कोख और मातृभूमि के रूप में चित्रित करता है, तो कोई उसे कालरात्रि और माया कहकर सत्य के तमाम साधकों को सख्त ब्रह्मचर्य का उपदेश देता है।"[4]

मन्नू भंडारी पुरातन रूढ़ियों एवं संस्कारों से अपने सहज मन को सरलता से तोड़ लेती हैं। नारी की सामाजिक नियति और मानसिकता को अपने अनुभवों के आधार पर बड़ी गहराई से उभारती हैं। अपने सृजनात्मक व्यक्तित्व के माध्यम से रचनाओं में तीखे तेवर के साथ उपस्थित होती है जिससे कई सम्भावनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। नैतिक संबंधों के बदलाव और उसमें पड़ने वाली सम्बंधों की दरार को मन्नू जी विशिष्ट दृष्टि प्रदान करती है। महिला होने के बावजूद स्त्री–पुरुष सम्बंन्धों में जिस प्रामाणिकता और तटस्थता का परिचय मन्नू भंडारी ने दिया वह सराहनीय है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में अस्मिताओं के उभार में जिन लेखक–लेखिकाओं ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया उनके संबंध में यह उद्धरण उल्लेखनीय है– "स्वतंत्रता के बाद पहली बार सच्चे अर्थों में हमारे समाज में एक विशाल मध्यवर्ग ने अपना वास्तविक आकार ग्रहण किया। इसी मध्यवर्ग की पीड़ा के साथ नारी के

अस्तित्व को कई रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त करने का प्रयत्न किया। इसमें महिला लेखिकाएँ भी आगे आयीं, जिन्होंने पूरे मध्यवर्ग को समाज के सम्मुख खोल दिया। तत्कालीन समाज की विसंगतियों, दोहरे व्यक्तित्व को निभाने की यंत्रणा, पारिवारिक मूल्यों का विघटन, विखंडन और उसमें मानव की छटपटाहट के साथ नारी की धीरे–धीरे परिवर्तित होती जीवन दृष्टि, उसकी मुक्ति की कामना, आधुनिक नारी के अंतर्द्वन्द्व आदि को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। उन्होंने पढ़ी–लिखी आत्मनिर्भर मध्यवर्गीय नारी के दायरे को विशिष्टता प्रदान की क्योंकि यही एक ऐसा दायरा है जिसमें समाज की सारी भयावह समस्याएँ और जीवन का यथार्थ दृष्टिगत होता है। विशेषतः 1960 के बाद की लेखिकाओं ने अपने पूर्ववर्ती भावबोध को तोड़ते हुए नवीन भावबोध की स्थापना कर सारे बंधन और सीमाओं का अन्वेषण किया और अपनी रचनाओं में मुक्तिवादी चेतना की विभिन्न पर्तों को खोलकर रख दिया। मन्नू भण्डारी उन्हीं में से एक हैं।"[5]

मन्नू भण्डारी साठोत्तरी कथाकारों में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उन्होंने मनुष्य के दुख, पीड़ा और नारी के संघर्ष को समाज के सामने लाने का काम किया है। इनका रचनाकाल लगभग पाँच दशकों तक रहा, इस दौरान उन्होंने हिंदी साहित्य जगत में अपनी निजी पहचान स्थापित की। समकालीन लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी का नाम बहुचर्चित है। मन्नू जी ने अपनी रचनाओं की विषयवस्तु में मुख्य रूप से मानवीय संवेदनाओं को रखा है। उन्होंने मानव जीवन की विभिन्न स्थितियों को अलग–अलग दृष्टि से देखने का काम किया है। इनकी रचनाओं में संबंधों की विवशता, जीवन की विसंगतियाँ और अकेलापन गहरी संवेदना के साथ प्रकट हुआ है। मन्नू जी ने अपनी रचनाओं में नारी–जीवन की पीड़ा, अंतर्द्वन्द्व, घुटन, रूढ़ियों के प्रति उसका विद्रोह, पुरुष निर्भरता, अतृप्त कामेच्छा के साथ दो पीढ़ियों के संघर्ष में पिसती नयी पीढ़ी के तनाव को बहुत ही बारीकी से चित्रण किया है। वे अपनी तरह की अप्रतिम साहित्यकार हैं। दरअसल मन्नू भंडारी के व्यक्तित्व पर जिन दो लोगों का गहरा प्रभाव पड़ा है वे हैं– इनके पिता एवं इनकी अध्यापिका शीला अग्रवाल। अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में अपने पिता और मन्नू जी के बीच होने वाले वैचारिक टकराव का जिक्र किया है। जिसका उल्लेख यहाँ देख सकते हैं– "होश सँभालने के बाद जिन पिता से मेरी कभी नहीं बनी... उम्र के इस प्रौढ़ेपन में पीछे मुड़कर देखती हूँ तो आश्चर्य होता है, बल्कि कहूँ की अविश्वसनीय लगता है कि आज अपनी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ मैं जो भी हूँ, जैसी भी हूँ, उसका बहुत–सा अंश विरासत के रूप में शायद मुझे पिता से ही मिला है...।"[8] वे स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में स्त्री–जीवन की कठिनाइयों की भरपूर समझ रखने वाली संवेदनशील और समर्थ लेखिका है। उनके पास कथा का जो दृष्टि है वह अपने

में विशिष्ट और अन्य कथाकारों में विरल है। उनकी सरलता अनूठी है जिसे महसूस किया जा सकता है।

आधुनिक जीवन में उनके साहित्य में हम मानव–मन का दर्द, पीडा, द्वन्द्व और तनाव को देख सकते हैं। व्यक्ति के आस–पास के माहौल को पूरे यथार्थ के साथ उन्होंने चित्रित किया है। अपने उपन्यासों में इन्होंने अपने जीवन के विस्तृत अनुभवों की अभिव्यक्ति दी है। इन्होंने तीन उपन्यासों की रचना की 'आपका बंटी' (1971 ई०), 'महाभोज' (1982 ई०) और 'स्वामी' (2007 ई०) प्रमुख है। उनमें भारतीय समाज की पारिवारिक और सामाजिक, सांस्कृतिक, वर्ग की गहरी समझ है, जिसके कारण उनकी कथात्मक प्रस्तुति संवेदना और विषय–वस्तु के स्तर पर अमिट छाप छोड़ती है। वे पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देने के लिए आलंब नहीं गड़ती है, न ही वे केवल स्त्री स्वतंत्रता की ही कथाकार हैं। उनकी संवेदना का फैलाव काफी बड़ा है और उन्होंने स्त्री–जीवन के विभिन्न पक्षों के अलावा राजनीति और आमजन को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया। मन्नू जी का बहुचर्चित उपन्यास 'महाभोज' है। यह उपन्यास तब आया जब हिंदी साहित्य और भारतीय राजनीति का केन्द्रीय विषय दलित विमर्श नहीं था। पारिवारिक बिखराव उनकी कहानियों में कई बार अलग–अलग रूपों में आयी है। मन्नू जी ने इस उपन्यास में प्रतिरोध के दमन के लिए अपनायी गई युक्तियों का बेबाकी से वर्णन किया है। वह वर्तमान दौर में ज्यादा प्रासंगिक है। मन्नू जी का रचनाकाल लगभग पाँच–छह दशकों का रहा है। इस दौरान उन्होंने लगभग पचासेक कहानियाँ और तीन उपन्यासों की रचना की। इसके अलावा उन्होंने आत्मकथा नाटक और बच्चों के लिए कहानियाँ भी लिखी है। इनकी कई कहानियों पर फिल्म बन चुकी है। मध्यवर्गीय समाज में स्त्री–जीवन का संघर्ष उनकी कहानियों की केन्द्रीय वस्तु है। वे स्त्रियों के सामर्थ्य और स्वतंत्र चेतना को बड़ी ही स्पष्टता के साथ सामने लाती हैं। इनकी कथाओं में ऐसे स्त्री पात्रों की संख्या अधिक है जो पूर्व निर्मित सामाजिक और नैतिक मान्यताओं को ध्वस्त करते हुए कथा साहित्य के नए प्रतिमानों का सृजन करती हैं। ये स्त्री पात्र न केवल अपनी उपस्थिति या अपने होने के प्रति, अपनी अस्मिता के प्रति पूर्णरूप से सचेत हैं बल्कि अपने समय और समाज के सरोकारों को लेकर भी दृष्टि संपन्न है।

इसमें संदेह नहीं की मन्नू जी प्रचलित अर्थ में स्त्रीवादी लेखिका नहीं हैं लेकिन स्त्री अस्मिता के प्रति इनमें सजगता कम नहीं दिखलायी देती है। उनकी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' की विषयवस्तु उनका दाम्पत्य जीवन है। एक प्रकार से यह उनकी पीड़ा का आख्यान है जिसमें वे अपनी पुत्री, घर और आजीविका के प्रति दायित्व के बीच संतुलन बनाने की कथा कहती हैं। यहीं वे बताती हैं कि साहित्य लेखन कभी उनका पहला सरोकार नहीं रहा। उनके लेखन का स्थान हमेशा पुत्री, परिवार और नौकरी के बाद का रहा। अपनी लंबी बीमारी के दौरान अस्वस्थ

रहते हुए 'एक कहानी यह भी' लिखा। उनकी यह आत्मकथा उनकी जीवन स्थितियों के साथ–साथ उस कालखंड के साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य पर भी दृष्टिपात करती चलती है।

मन्नू जी का उपन्यास 'आपका बंटी' का केंद्रीय चरित्र 'शकुन' है। 'शकुन' विवाह तोड़ने, नया जीवन शुरू करने, परंपरागत माँ की छवि से बाहर निकलने, देह की माँग को अस्वीकार नहीं करने का साहस दिखाती है। मन्नू जी की कहानी 'यही सच है' में एक स्त्री पात्र एक साथ दो पुरुषों के प्रति आकर्षण महसूस करती है। 'महाभोज' मन्नू भंडारी का महत्वपूर्ण राजनैतिक उपन्यासों में शामिल है जिसके आगे के किसी ऐसे आख्यान की अभी भी प्रतीक्षा है जो भारतीय राजनीति में दलित–विमर्श और उसकी केंद्रीयता को पुनर्स्थापित करे और उसे आगे ले जाय।

मन्नू भंडारी जी की राजनैतिक चेतना का पूर्ण विकास 'महाभोज' उपन्यास में देखा जा सकता है। लेखिका ने इस उपन्यास में राजनीति को सत्ता–विलास, अर्थ प्राप्ति का अखाड़ा मानने वाले मंत्रियों को पूरा नग्न करके जनता के सामने उपस्थित किया है। इस उपन्यास में स्वार्थी, भ्रष्टाचारी, पदलोलुप, अर्थतृषित, दमनकारी, बर्बर मंत्रियों के लिए किस प्रकार की सजा स्थापित किया जाय इस बात की ओर संकेत किया है। इस रचना के बारे में मन्नू जी लिखती है– "अपने व्यक्तिगत दुःख–दर्द, अंतर्द्वंद्व या आंतरिक 'नाटक' को देखना बहुत महत्त्वपूर्ण, सुखद और आश्वस्तिदायक तो मुझे भी लगता है मगर जब घर में आग लगी हो तो सिर्फ अपने अंतर्जगत में बने रहना या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासंगिक, हास्यास्पद और किसी हद तक अश्लील नहीं लगने लगता ? संभवतः इस उपन्यास (महाभोज) की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो। इसे मैं अपने व्यक्तित्व और नियति को निर्धारित करने वाले परिवेश के प्रति ऋण–शोध के रूप में ही देखती हूँ।"[7]

हिंदी साहित्य में दलित लेखन का उभार 80–90 के दशक से माना जाता है। इस संबंध में यह उद्धरण उल्लेखनीय है– "90 के दशक में ही हिंदी साहित्य में दलित लेखन का उभार हुआ और उसका प्रभाव बढ़ा। दलित लेखकों ने अपने आत्मबोध और अनुभव को अपने लेखन का आधार बनाया। उन्होंने अपने साहित्य को भारतीय समाज में अपनी पराधीन स्थिति से मुक्ति का माध्यम बनाया। दलित साहित्य हिंदी के ललित साहित्य से एकदम भिन्न है। उसमें दलित समाज के जीवन का यथार्थ, उस यथार्थ के प्रासद अनुभव, यातना और पीड़ा तथा उससे उपजे आक्रोश की अभिव्यक्ति है। दलित लेखकों में पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही सक्रिय हैं और अपनी नई रचनाशीलता से हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। दलित साहित्य में आत्मकथा, उपन्यास, नाटक, कहानी, कविता, जीवनी और आलोचना का लगातार लेखन हो रहा है। उन्होंने अपने साहित्य की विशिष्टता को व्यक्त करने के लिए नए सौंदर्यशास्त्र का भी निर्माण किया है। दलित लेखक अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य

की नई चिंता और चेतना व्यक्त कर रहे हैं जिसे 'दलित विमर्श' नाम दिया गया है। हिंदी के दलित लेखकों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, डॉ० धर्मवीर, श्योराज सिंह 'बेचैन', रजतरानी मीनू, मोहनदास नैमिषराय, सुशीला टाकभौंरे, अनीता भारती, अजय नावरिया आदि प्रमुख हैं। दलित साहित्य और दलित विमर्श एक अखिल भारतीय प्रवृत्ति है क्योंकि दलित देशभर में हैं और वे समान यातना, गुलामी और दमन के शिकार हैं। इसलिए उनका अनुभव भी एक तरह का है और उनके साहित्य में भी समानता है।"[8] निःसंदेह समकालीन कथा साहित्य में दलित विमर्श एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है।

मन्नू भंडारी स्त्री अस्मिता के प्रति सचेत कथाकार अवश्य है लेकिन समकालीन दौर की लेखिकाओं की तरह ये स्त्री के संघर्ष को पुरुष के विरुद्ध संघर्ष नहीं मानती हैं। इस प्रकार इनका अस्मितावादी लेखन व्यापक सामाजिक और मानवीय परिप्रेक्ष्य में ही पूरी तरह विश्लेषित किया जा सकता है। निश्चय ही ये बड़े परिप्रेक्ष्य की यथार्थवादी लेखिका हैं।

संदर्भ संकेत :

1. सिंह, पुष्पाल. *भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास.* नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण–2012, पृ० 207–208.
2. खेतान, प्रभा. *बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ.* नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004, पृ० 51–52.
3. सिंह, पुष्पाल. *भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास.* नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण–2012, पृ० 208–209.
4. पाण्डे, मृणाल. *स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक.* दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2002, पृ० 14.
5. पटेल, डॉ० भूमिका. *मन्नू भंडारी का कथा–साहित्य : संवेदना और शिल्प.* कानपुर : चिंतन प्रकाशन, 2012, पृ० 07.
6. भंडारी, मन्नू. *एक कहानी यह भी.* नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2007, पृ० 08.
7. भंडारी, मन्नू. *महाभोज.* नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2006, पृ० 06.
8. परवीन, फरहत (संपा०). *आजकल.* नई दिल्ली, वर्ष–75, अंक–9–10, जनवरी–फरवरी–2020, पृ० 09.